जैन श्रावकाचार में पन्द्रह कर्मादान : एक समीक्षा*

डॉ. कौमुदी सुनील बलदोटा

प्रस्तावना

श्वेताम्बर जैन परम्परा के मन्दिरमार्गी, स्थानकवासी तथा तेरापंथी तीनों सम्प्रदायों में नित्यपाठ के आवश्यकसूत्र में श्रावकव्रतों के अतिचारों में पन्द्रह कर्मादानों का उच्चारण किया जाता है। पन्द्रह कर्मादानों को उनके सम्बन्धित विवरणात्मक ग्रन्थों में निषिद्ध व्यवसायों के रूप में प्रस्तुत किया है। निषिद्ध व्यवसायों का स्वरूप, उनकी संख्या, ये व्यवसाय करनेवाले व्यावसायिक आदि के बारे में मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई तथा अनके प्रश्न भी उठें। इनका मूलगामी शोध लेते हुए जो अनेक तथ्य सामने उभरकर आए, उसकी समीक्षा इस शोधलेख में करने का प्रयास किया है।

कर्मादानसम्बन्धी आधारभूत ग्रन्थ :

पाँचवें अर्धमागधी अंगग्रन्थ भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) के आठवें शतक के पाँचवें उद्देशक में आजीविकसिद्धान्त का निरूपण किया है। आजीविक जिन क्रियाओं को निषिद्ध मानते हैं ऐसी प्रायः पशुसम्बन्धित क्रियाओं की गिनती वहाँ की गयी है। उसके अनन्तर जैन श्रावकों द्वारा वर्जनीय पन्द्रह कर्मादानों का निर्देश है।[१]

विशेष लक्षणीय बात यह है कि भगवती में कर्मादानों को श्रावकव्रत के अतिचार के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है तथा टीकाकार ने भी श्रावकव्रत के अतिचार से इसका सम्बन्ध नहीं जोडा है।

सातवें अर्धमागधी अंगग्रन्थ उपासकदशा का विषय श्रावकाचार ही है। पहले 'आनन्दश्रावक' अध्ययन में बारह श्रावकव्रतों के अन्तर्गत द्वितीय गुणव्रत स्वरूप सातवें उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत के अतिचार के रूप में पन्द्रह कर्मादानों का निर्देश है। कहा है कि, **'कम्मओ णं समणोवासएणं पणरस**

★ ऑल इंडिया ओरिएण्टल कॉन्फरन्स (AIOC) अधिवेशन ४४, कुरुक्षेत्र, जुलै २००८ में पढा गया शोधपत्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइं, तं जहा - इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे केसवाणिज्जे जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया सरदहतलायसोसणया असईजणपोसणया ।'[२]

अर्धमागधी मूलसूत्र 'आवश्यक' में छठें प्रत्याख्यान अध्ययन में भी उपासकदशा के समान ही कर्मादानों का विवरण है ।[३]

तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय के सोलहवें सूत्र के भाष्य में, अशनपान आदि का परिमाण करने के लिए कहा है । स्वोपज्ञ भाष्य में पन्द्रह कर्मादानों का उल्लेख नहीं है । सिद्धसेनगणिकृत टीका में भाष्य के आधार से 'आदि' शब्द के अन्तर्गत पन्द्रह कर्मादानों का उल्लेख किया है । वहाँ स्पष्ट कहा है कि, '**प्रदर्शनं चैतद् बहुसावद्यानां कर्मणां, न परिगणनमित्यागमार्थः ।**'

इससे स्पष्ट होता है कि तत्त्वार्थभाष्य के काल में (लगभग पाँचवी सदी) १५ कर्मादानों की कल्पना दृढमूल नहीं थी । लेकिन सिद्धसेनगणि के काल तक (लगभग आठवी-नवमी सदी) पन्द्रह कर्मादानों की धारणा, उपदेश तथा प्रवचनों के द्वारा दृढ होती चली होगी । इसी वजह से उन्होंने पन्द्रह कर्मादानों का परिगणन सर्वसमावेशक न होने का जिक्र किया होगा ।

आचार्य हरिभद्र ने आठवी शताब्दी में जैन महाराष्ट्री भाषा में श्रावकधर्म का विवेचन करनेवाले श्रावकप्रज्ञप्ति तथा श्रावकधर्मविधिप्रकरण नाम के दो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं । तथा पंचाशक और पंचवस्तुक इन ग्रन्थों में भी श्रावकव्रतों का निरूपण किया है । इन सभी ग्रन्थों में उन्होंने भी पन्द्रह कर्मादानों का अतिचार के रूप में ही प्ररूपण किया है । तथापि स्पष्टतः उद्धृत किया है कि, 'भावार्थस्तु वृद्धसम्प्रदायादेव अवसेयः ।'[४] पन्द्रह कर्मादानों की गिनती सर्वसमावेशक नहीं है, यह दर्शानेवाला तत्त्वार्थसूत्रभाष्य की सिद्धसेनगणिकृत टीका का ही उपरोक्त वाक्य हरिभद्र ने उद्धृत किया है ।

कर्मादानों का सुविस्तृत विवेचन श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र की रत्नशेखरसूरिकृत टीका में उपलब्ध है । इन पन्द्रह कर्मादानों से जुड़े हुए बहुतसे व्यवसायों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विस्तृत विवेचन रत्नशेखरसूरि ने किया है। विवेचन के बीच 'मनुस्मृति', 'परजनों के द्वारा किया हुआ निषेध' तथा 'लौकिकों द्वारा इनका महापातकत्व' भी स्पष्ट किया है। अन्त में अन्यान्य 'खरकर्मों' का भी निर्देश है। अन्तिमतः सर्वांगीण व्रतपालन की फलश्रुति भी दी है।[५] इस समग्र विवेचन के ऊपर ब्राह्मण परम्परा का प्रभाव स्पष्टतः दिखायी देता है।

पन्द्रह कर्मादानों का स्वरूप :

(अ) कर्मादान शब्द का अर्थ :

भगवतीसूत्र की टीका के अनुसार, 'कम्मादाणाइं' ति कर्म्माणि – ज्ञानावरणादीन्यादीयन्ते यैस्तानि कर्मादानानि अथवा कर्माणि च तान्यादानानि च – कर्मादानानि कर्महेतव इति विग्रहः ।'[६] अर्थात् ऐसे कर्म अथवा व्यापार जिनसे ज्ञानावरणादि कर्मों का प्रबल बन्ध होता है।

भगवती में स्पष्ट लिखा है कि इन कर्मादानों का सेवन श्रावकों को न स्वयं करना चाहिए, न दूसरों से कराना चाहिए और न करनेवाले अन्य किसी का अनुमोदन या समर्थन करना चाहिए।[७]

(ब) पन्द्रह कर्मादानों का स्पष्टीकरण :

पन्द्रह कर्मादानों का स्पष्टीकरण श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र की टीका में निम्नलिखित प्रकारसे है –

(१) **इंगालीकम्म (अङ्गारकर्म) :** काष्ठदाह से अंगार बनाना, कोयला बनाना, भाड में ईटें पकाना, कुम्भकार, लोहकार, सुवर्णकार आदि के कर्मों को भी अङ्गारजीविका कहा है।

(२) **वणकम्म (वनकर्म) :** वन से सम्बन्धित पत्र, पुष्प, फल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ तथा बांस आदि का विक्रय करना, वनों को बाड लगाना, बस्ती आदि के लिए जंगल साफ करना, जंगल में आग लगाना, धान्य पीसना आदि।

(३) **साडीकम्म (वनकर्म) :** शकट अर्थात् बैलगाडी, रथ आदि बनाकर बेचने का धन्धा करना।

(४) **भाडीकम्म (भाटककर्म) :** पशु, बैल, अश्व आदि को भाटक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(भाडे) पर देने का व्यापार करना ।

(५) **फोडीकम्म (स्फोटककर्म) :** यव, चणक, गोधूम, करड आदि से सत्तू, दाली, पिष्ट और करम्ब आदि बनाना । कुआँ, सरोवर आदि के निर्माण के लिए खान खोदना, पत्थर फोडना, आदि व्यवसाय करना।

(६) **दंतवाणिज्ज (दन्तवाणिज्य) :** हाथी के दांत, उल्लू के नख, हंस के पंख, हिरन-व्याघ्र आदि का चर्म, शंख, शुक्ति, कस्तुरी आदि का व्यापार करना ।

(७) **लक्खवाणिज्ज (लाक्षावाणिज्य) :** लाक्षा, धातकी, नीली, मनःशिला, हरिताल, पटवास, टंकण, क्षार आदि का विक्रय करना ।

(८) **रसवाणिज्ज (रसवाणिज्य) :** मधु, मद्य, मांस, म्रक्षण, दुग्ध, दधि, घृत, तैल आदि का विक्रय करना ।

(९) **केसवाणिज्ज (केशवाणिज्य) :** दास-दासी एवं पशु आदि जीवित प्राणियों के क्रय-विक्रय का धन्धा करना ।

(१०) **विसवाणिज्ज (विषवाणिज्य) :** विष का विक्रय करना तथा खड्ग, कुद्दाल, हल आदि शस्त्रों का विक्रय करना ।

(११) **जंतपीलणकम्म (यन्त्रपीडनकर्म) :** ऊखल-मुसल, अरहट्ट आदि का विक्रय करना, इक्षु-सर्षप आदि से तैल निकालकर विक्रय करना तथा जलयन्त्र आदि बनाकर विक्रय करना ।

(१२) **निल्लंछणकम्म (निर्लाञ्छनकर्म) :** बैल आदि के शृंग-पुच्छ आदि तोडना, नासावेध करना, पशुओं की त्वचा पर दाह करना, बैल आदि को नपुंसक बनाना इन सब कर्मों की गिनती यहाँ की है ।

(१३) **दवग्गिदावणया (दवाग्निदापन) :** भील आदि वनों को दवाग्नि देकर खुशी से रहते हैं । जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए जंगल में आग लगाना, जलाना आदि खरकर्मों का समावेश इसमें किया है।

(१४) **सरदहतलायसोसणया (सरद्रहतडागशोषण) :** बीज बोने के लिए तालाब, झील, सरोवर, नदी आदि जलाशयों को सुखाना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१५) **असईजणपोसणया (असतीजनपोषण) :** धन कमाने के लिए और व्यभिचारवृत्ति के लिए वेश्या, दासी, नपुंसक आदि का पोषण करना। शुक-सारिका-मार्जार-कुक्कुट-मर्कट-श्वान-शूकर आदि का पोषण करना।

इंगाली आदि कर्मादानों से अग्निकायिक आदि एकेन्द्रियों की तथा सभी षड्जीवनिकायों की हिंसा होती है । इसलिए ये कर्म निषिद्ध माने गये हैं ।[८]

कर्मादानों के स्वरूप की समीक्षा :

- इन पन्द्रह में से **दन्त-रस-लक्ख-विस और केस** इन शब्दों के साथ ही 'वाणिज्य' शब्द का प्रयोग हुआ है । बाकी सबको सिर्फ 'कर्म' कहा है। इससे शायद यह सूचित होता है कि **निषिद्ध व्यवसाय के रूप में ये पाँच ही प्रमुखता से अपेक्षित है ।**
- सामान्यत: पन्द्रह कर्मादानों को उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत के अतिचार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । अन्य श्रावकव्रतों के भी पाँच पाँच अतिचारों की गिनती की गयी है । उदाहरण के तौर पर सामायिकव्रत के अतिचार में कहा है कि अगर सामायिक करते समय हम यह भूल गये कि हम सामायिक कर रहे हैं और अन्य विचार तथा काम करने लगे तो यह सामायिकव्रत का अतिचार हुआ । इसपर क्या उपाय है ? जब हमें खुद का दोष महसूस हुआ तो हम प्रतिक्रमण आदि करके उस दोष से निवृत्त हो सकते हैं और स्वस्वरूप में स्थित हो सकते हैं ।

लेकिन कर्मादानों के बारे में इस प्रकार की प्रक्रिया हम नहीं कर सकते। अगर हमारा इक्षुरस बनाने का व्यवसाय है तो हमें जानना चाहिए कि यह 'यन्त्रपीडनकर्म' है । समझो कि हमें यह सच मालूम हुआ तो प्रतिक्रियारूप उस व्यवसाय को ही हमेशा के लिए छोड दे या हररोज उसका प्रतिक्रमण करते रहें ? इस प्रकार बहुत सारे कर्मादानों को 'अतिचार' रूप लेने में अडचनें पैदा होती हैं । वे सुलझाने का दिग्दर्शन इस श्रावकाचार से नहीं मिलता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- लकडियों का व्यवसाय, संगमरमर का व्यवसाय, दाल बनाने का व्यवसाय आदि व्यवसाय जैन लोग पीढियों से करते आ रहे हैं । इन व्यवसायों में वे लकडी आदि दूसरों से कटवाते हैं । लेकिन करवाना और अनुमति देना, ये दोनों तो उनको करना ही पडता है । इसलिए **तीन करण से अतिचाररहित होना संभव नहीं है ।** यही बात बहुत सारे व्यवसायों के बारे में कही जा सकती है ।

- कोयला बनाना, तेल निकालना, औषधी बनाना आदि व्यवसाय निषिद्ध माने हैं । जैन गृहस्थ को कोयला (आधुनिक काल में रॉकेल, गॅस इत्यादि), तेल आदि का उपयोग रसोई बनाने के लिए तो करना ही पडता है । इससे यह निष्पन्न होता है कि अगर कोयला, तेल आदि दूसरों ने बनवाया तो जैन श्रावक वह चीजें उपयोग में ला सकते हैं। मतलब यह हुआ कि उसमें निहित हिंसा के भागीदार हम नहीं बनना चाहते । **दूसरों द्वारा बनायी गयी चीजों का अगर हम इस्तेमाल कर सकते हैं तो खुद को उन चीजों को बनाने का या बेचने का निषेध तर्कसंगत नहीं लगता ।**

- **किसी भी हिंसक वृत्ति के आधार पर बनायी हुई चीज अगर हम पूरी ही त्यज दें तो उसका व्यवसाय निषिद्ध माना जा सकता है।** जैसे कि हस्तिदंत, मृगाजिन, रेशम आदि का जैन लोग सामान्यतः त्याग करते हैं तो उनपर आधारित व्यवसायों को निषिद्ध मानना ठीक है । लेकिन हम शक्कर, गुड, आटा, तेल आदि सब रोज इस्तेमाल करते हैं तो उसपर आधारित व्यवसाय निषिद्ध नहीं माने जा सकते ।

- इन कर्मादानों में 'कृषि' का निर्देश नहीं है । लेकिन हल, कुदाल, जलयन्त्र आदि कृषि के औजारों का निर्देश है । **भ. ऋषभदेव के द्वारा असि, मसि, कृषि का प्रणयन होने की परम्परा होने के कारण इसमें कृषि का समावेश नहीं किया गया होगा ।**

- 'परम्परा से पन्द्रह कर्मादानों की जो सूचि चलती आयी है वह सर्वसमावेशक नहीं है' - इस तथ्य को हरिभद्रसूरि, सिद्धसेनगणि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नशेखरसूरि जैसे आचार्य अच्छी तरह जानते हैं । **अगर इस प्रकार निषिद्ध व्यवसाय अनगिनत हैं तो उनकी 'पन्द्रह' संख्या निर्धारित करना युक्तियुक्त नहीं है । साक्षात् पंचेन्द्रियों के वध पर आधारित व्यवसाय न करने का संकेत दिया होता तो वह भी काफी होता था ।** आश्चर्य की बात यह है कि मत्स्यव्यवसाय, कसाईखाना चलाना आदि व्यवसायों का इनमें निषेध के तौर पर निर्देश नहीं है । इसकी सम्भावना तो यह होगी कि अहिंसा की प्रधानता होने के कारण कोई भी जैनधर्मी इसे स्वाभाविकता से ही निषिद्ध समझता होगा । इसी वजह से अलग गिनती की जरूरी नहीं लगी होगी ।

- भगवान महावीर के जीवनकाल में समाज के सामान्य स्तर के कई लोग उनके संपर्क में आए । लकडहारे, कुम्हार, सुनार आदि के उल्लेख आगमों में पाये जाते हैं ।[९] आचारांग में स्पष्ट निर्देश है कि इन सब लोगों के निवासस्थान में या उनके नजदीक भ. महावीर ठहरते भी थे ।[१०] इनमें से कई लोगों ने श्रावकदीक्षा भी ग्रहण की थी । इनमें से किसी को भी भ. महावीर ने उनके निषिद्ध व्यवसाय त्यजने का निर्देश नहीं किया है । **इस आगमिक प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि भ. महावीर के जीवनकाल में इन पन्द्रह कर्मादानों की मान्यता प्रचलित नहीं थी ।**

कोई भी धर्मप्रचारक अगर धर्मान्तर के समय लोगों को उनका परम्परागत व्यवसाय छोडने को कहे तो धर्मप्रसार में जरूर बाधा उत्पन्न होगी । भ. महावीर के काल में तो जैन धर्म का प्रसार काफी मात्रा में हुआ था ।

- यह एक सामाजिक तथ्य है कि जिस जिस समय जैन समाज पर हिन्दुधर्म का प्रभाव बढता गया उस समय जैन आचार में हिन्दु समाज में प्रचलित मान्यताओं का जोर बढता गया । **प्रायः सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक हिन्दु धर्म की जात्याधार वर्णव्यवस्था का प्रभाव जैनों पर भी पडा होगा । इसी वजह से ब्राह्मणों ने जिनको शूद्रों के तथा अतिशूद्रों के व्यवसाय माने थे, उनको जैन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परा ने भी निम्न दर्जे के व्यवसाय समझकर निषेध किया होगा । मनुस्मृति के अनुसार सुतार, लुहार, कुम्हार, स्वर्णकार लोगों को शूद्र माना है तथा चाण्डाल जैसे लोगों को अतिशूद्र माना है । इसी वजह से इंगाली, वण, दन्त, लाक्षा, निर्ल्लंछण, दवग्गिदावणया आदि व्यवसाय निषिद्ध व्यवसायों के तौरपर माने गये होंगे । वर्णव्यवस्था के अनुसार 'वैश्य वर्ण' शूद्र और अतिशूद्रों से उच्च माने गये हैं । यही धारणा पकडकर शूद्रों द्वारा किये गये व्यवसायों का निषेध किया गया होगा । श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र में तो साक्षात् मनुस्मृति का ही उल्लेख किया है –

> सद्यः पतति मांसेन, लाक्षया लवणेन च ।
> त्र्यहेण शूद्रीभवति, ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

- जब तक यह व्यक्तिनिष्ठ और छोटे पैमाने पर चलनेवाले व्यवसाय थे तब तक ठीक था । लेकिन आज विविध यन्त्रों की, कारागिरों की मदद से जब हरेक छोटे व्यवसाय का उद्योग (Industry) बनने जा रहा है तब इन व्यवसायों की ओर उच्चनीचता की दृष्टि से देखने की भावना नष्ट होती जा रही है । **इसलिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में श्रावकाचार में पन्द्रह कर्मादानों की संकल्पना का औचित्य प्रायः लुप्तप्राय ही है ।**
- **प्राचीनतम जैन आगमों में गृहस्थों के लिए जो षट्कर्म बताएँ हैं उनमें असि, मसि, कृषि, विद्या और वाणिज्य के अतिरिक्त शिल्प का भी उल्लेख है ।** समवायांगसूत्र में बहत्तर कलाओं के नाम भी दिए हैं ।[११] **अगर इन सबका प्रचलन जैन समाज में होगा तो पन्द्रह कर्मादानों को उसमें कोई अवकाश ही नहीं है ।**
- ये पन्द्रह कर्मादान कई बार अन्योन्याश्रित हो जाते हैं । इसी वजह से सन्दिग्धता भी पैदा होती है । **'रसवाणिज्ज' और 'जंतपीलण' इनमें भेद करना कठिन है । यन्त्रपीडन के बिना किसी भी प्रकार का रस या तेल संभव नहीं है ।** व्यवसाय के तौरपर यन्त्रपीडन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यावश्यक ही है । ईख से गुड या शक्कर बनाने के लिए ईख का यन्त्रपीडन आवश्यक है । तेल निकालने के लिए भी यन्त्रपीडन आवश्यक है ।

रसवाणिज्य में मुख्यत: मद्य की गिनती की है । जब सप्त व्यसनों में मद्य का निषेध स्पष्टत: किया है तो यहाँ रसवाणिज्य में उसे अन्तर्भूत करना अटपटा सा लगता है । रसवाणिज्य अगर निषिद्ध माना जाए तो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सभी प्रकार के ज्यूस, जाम, जेली और उसपर आधारित कई व्यवसाय सब निषेध की कोटि में आ जायेंगे । इस प्रकार बहुत सारे व्यवसाय निषिद्ध कोटि में डालना औचित्यपूर्ण भी नहीं है और व्यावहारिक भी नहीं है । प्रासुक भिक्षा के रूप में भ. ऋषभदेव ने ईख का रस ग्रहण करने की विधि ग्रन्थों में वर्णित है । **अगर ईख का रस स्वीकार्य है तो उसपर आधारित व्यवसाय निषिद्ध मानना तर्कसंगत नहीं है ।**

इसी प्रकार 'दवग्गिदावणया' का समावेश 'इंगालकम्म' और 'वणकम्म' में हो सकता है ।

- 'साडीकम्म' को अगर आधुनिक परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो उसमें सभी प्रकार के वाहन बनाने का समावेश किया जा सकता है । पुराने जमाने में शायद वाहनप्रयोग से होनेवाली हिंसा का जिक्र करके वाहनप्रयोग का निषेध किया होगा ।

लेकिन पुराने जमाने से ही जैन श्रावको के दूर दूर के देशों में जाकर व्यापार करने के वर्णन आगमों में पाये जाते हैं। इसलिए शकटकर्म का निषेध करना भी तर्कसंगत नहीं है ।

- वाहन, मकान आदि भाडे से देने का व्यवहार पुराने जमाने से ही जैनों में प्रचलित है । तथा पैसे ब्याजपर देने का जैन समाज का पीढीजात धन्धा है । इस परिस्थिति में 'भाटीकर्म' को निषिद्ध व्यवसाय मानना भी तर्कसंगत नहीं है ।

- **श्रावक स्वदारसन्तोषव्रत का पालन करता है इसलिए वेश्याव्यवसाय**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का उसके लिए निषेध करना तर्कसंगत लगता है। श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र में शुक, सारिका, कुक्कुट, मयूर, श्वान आदि का घर में पोषण न करने का विधान इसी कर्मादान के अन्तर्गत किया है। आज भी कुक्कुटपालन, मत्स्यपालन, अश्वपालन आदि व्यवसाय सामान्यतः जैनियों द्वारा नहीं किये जाते तथा घर में भी तोता, बिल्ली, कुत्ता आदि पालने की प्रथा कम है। तिर्यंचयोनिक जीवों को बन्धन में न डालने का संकेत जो इस कर्मादान में निहित है उसीके प्रभाव से जैन आचार में इस प्रकार के तिर्यंचों का पालन नहीं अपनाया होगा।

दिगम्बर ग्रन्थों में पन्द्रह कर्मादानों की परिगणना का अभाव :

अर्धमागधी या जैन माहाराष्ट्री भाषा में लिखे हुए श्वेताम्बर ग्रन्थों की तुलना से दिगम्बर ग्रन्थों में श्रावकाचार के ऊपर ज्यादा मात्रा में ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वसुनन्दि श्रावकाचार का अपवाद छोडकर प्रायः सभी ग्रन्थ संस्कृत में हैं। रत्नकरण्डश्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, यशस्तिलकचम्पू, अमितगति-श्रावकाचार, सागारधर्मामृत, धर्मसंग्रह, श्रावकाचार, लाटीसंहिता, आदि ग्रन्थो के निरीक्षण के बाद यह तथ्य सामने आया की उनमें पन्द्रह कर्मादानों या निषिद्ध व्यवसायों की गिनती कहीं भी प्रस्तुत नहीं की गयी है। सागारधर्मामृत ग्रन्थ में पन्द्रह कर्मादानविषयक उल्लेख निम्न प्रकार से है-

इति केचिन्न तच्चारु लोके सावद्यकर्मणाम्।
अगण्यत्वात्प्रणेयं वा तदप्यतिजडान् प्रति ॥[१२]

लाटीसंहिता में अहिंसा अणुव्रतधारक श्रावकों को कौनसे व्यवसाय टालने चाहिए इसका दिग्दर्शन किया है। फिर भी श्वेताम्बर साहित्य की तरह पन्द्रह कर्मादानों की गणना नहीं की है।[१३]

दिगम्बर श्रावकाचार में अहिंसा अणुव्रत के पालन के लिए हिंसा-अहिंसा का विचार, आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा, संकल्पी हिंसा और विरोधी हिंसा इस रूप में किया गया है। उपजीविका के लिए गृहस्थ को उद्योग, व्यवसाय अपनाने होते हैं। **खेती, दुकान, मकान आदि में हिंसा तो है ही, लेकिन जीवनावश्यक हिंसा को छोडकर बिना प्रयोजन हिंसा का त्याग गृहस्थ के लिए आवश्यक माना है।**[१४]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर श्रावकाचार में प्रतिमाओं को केन्द्रस्थान में रखकर श्रावकाचार का प्रतिपादन किया गया है । उसमें स्पष्टतः कहा गया है कि, आरम्भत्याग-प्रतिमाधारी श्रावक ने सेवा, कृषि, वाणिज्य आदि घरसम्बन्धी सम्पूर्ण आरम्भ का त्याग करना चाहिए । दसवीं प्रतिधारक श्रावक किसी भी प्रकार के आरम्भकार्य के लिए अनुमति नहीं दर्शाता ।१५

श्रावक जब अपनी आध्यात्मिक प्रगति की ओर ध्यान देकर उत्तरोत्तर आदर्शभूत आचार की तरफ बढता है तब किसी भी प्रकार के व्यवसाय का उसके लिए निषिद्ध होना बिल्कुल तर्कसंगत है ।

सागारधर्मामृत के अनुसार दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक के लिए कहा है कि अष्टमूलगुणों को निर्मल करने के लिए श्रावक मद्य, मांस, मधु और मक्खन आदि का त्याग करें, उसका क्रय-विक्रय न करें तथा इन व्यापारों को अनुमति भी न दे ।[१६] जिन चीजों का श्रावक के लिए त्याग कहा है, उन चीजों के व्यापार का निषेध करना तर्कसंगत ही है ।

उपसंहार और निष्कर्ष :

श्वेताम्बरों के पन्द्रह कर्मादान याने विशिष्ट व्यवसायों के निषेध किस प्रकार तर्कसंगत नहीं है, यह इसके पहले इसी शोधलेख में बताया ही है। बहुत सारी तार्किक विसंगतियाँ होने के कारण शायद दिगम्बरों ने सामान्य श्रावक के लिए पन्द्रह कर्मादानों का निषेध नहीं प्रतिपादित किया होगा । दिगम्बर और श्वेताम्बरों के बहुत सारे भेद अभ्यासकों ने प्रस्तुत किए है । उनमें पन्द्रह कर्मादानों का यह मुद्दा भी लक्षणीय है । जिज्ञासु इस पर अधिक गौर करें ।

प्रत्येक धर्म के दो अंश होते हैं । जो तत्त्वाधार अंश होते हैं वे धर्म के केन्द्रस्थान में रहते हैं और वे त्रिकालाबाधित होते हैं । जो आचारात्मक या कर्मकाण्डात्मक होते हैं वे बाह्य अंश होते हैं, वे कालसापेक्ष तथा परिवर्तनशील होते हैं । आचारांग के समय पन्द्रह कर्मादानों की संकल्पना नहीं दिखायी देती है । मध्ययुगीन सदियों में ब्राह्मणधर्म के प्रभाव से व्यवसायों की ओर उच्चनीचता की दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति बढ गयी । काल के परिवर्तन के साथ समाज में परिवर्तन हुए । जब जाति-जातियों में उच्चनीचता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं रही तब व्यवसायों में भी नहीं रही । इसलिए इन कर्मादानों में से जो व्यवसाय आधुनिक सामाजिक मान्यताओं से मेल नहीं खाते उनको निषिद्ध मानना तर्कसंगत नहीं है । इसी वजह से दिगम्बरीयों ने इस कल्पना को कभी ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है ।

इन निषिद्ध व्यवसायों का स्वरूप देखकर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इनमें से ज्यादातर व्यवसाय प्रत्यक्ष व्यवहार में, पुराने जमाने में भी निषिद्ध नहीं थे, आज भी निषिद्ध नहीं है और भविष्यकाल में तो बिल्कुल निषिद्ध नहीं होंगे ।

मंदिरमार्गी, स्थानकवासी और तेरापंथी जैनियों में दैनन्दिन रूप में पन्द्रह कर्मादानों की गिनती रटने का जो परिपाठ है, उसकी चिकित्सक दृष्टि से समीक्षा होनी चाहिए । इसी उद्देश से यह शोधनिबन्ध लिखा है ।

सन्दर्भ

१. भगवती ८.५.१३ (८.२४२)
२. उपासकदशासूत्र ५१
३. आवश्यकसूत्र ७९ (२)
४. श्रावकप्रज्ञप्ति पृ. २८८; श्रावकधर्मविधिप्रकरणम् पृ. ८२
५. श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र पृ. १२१ अ- १२२ ब
६. भगवतीटीका पृ. ३७२ ब ७-९
७. भगवती ८.५.१३ (८.२४२)
८. श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र पृ. १२१ अ - १२२ ब
९. उपासकदशा-सप्तम अध्ययन
१०. आचारांग २.२.३६
११. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृ. २८४
१२. सागारधर्मामृत अध्याय ५-श्लोक २३
१३. लाटीसंहिता सर्ग ४- श्लोक १७७-१८३
१४. जैन ज्ञानकोश खंड ४ पृ. ४३७
१५. वसुनन्दि-श्रावकाचार गाथा २९८, गाथा ३००
१६. सागारधर्मामृत अध्याय ३- श्लोक ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचि

१. आचारांग (आयार) : अंगसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

२. आवश्यकसूत्र (आवस्सयसुत्तं) : महावीर जैन विद्यालय, मुंबई, १९७७

३. उपासकदशा (उवासगदसा) : अंगसुत्ताणि ३, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

४. जैन ज्ञानकोश (भाग-४) : सं. अज्ञात, मातोश्री चतुरबाई जैन ग्रन्थमाला ट्रस्ट, औरंगाबाद, वि.सं. २०४०

५. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र : उमास्वाति, स्वोपज्ञभाष्यसहित, सिद्धसेनगणिकृत टीका, दे.ला.जै.पु., सूरत, १९३०

६. भगवती (भगवई) : अंगसुत्ताणि २, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

७. भगवतीसूत्रटीका : अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, रतलाम, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, १९१९

८. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान : सं. डॉ. हीरालाल जैन, भोपाल, १९६२

९. श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रम् : रत्नशेखरसूरिकृत टीकासहित, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, मुंबई, १९१९

१०. श्रावकधर्मविधिप्रकरणम् : हरिभद्रसूरि, सं. चतुरविजयमुनि, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२४

११. श्रावकप्रज्ञप्ति (सावयपण्णत्ति) : हरिभद्रसूरि, सं. बालचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९८१

१२. श्रावकाचार संग्रह : (खंड १ से ४) सं. पं. हीरालाल सिद्धान्तालंकार, फलटण, १९७६

गीतगोविंद हौसिंग सोसायटी,
'बी' बिल्डींग, 559/A-5
महर्षिनगर, पुणे-411037
फोन : (020) 24260663

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org